6596

अप्रैल १९८४
वर्ष ७ : अंक १२

शिखर

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक १२

अप्रैल १९८४

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

आ श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर

सूची

हिन्दी जैन भक्त कवियों की मधुर भावना ३५७

हस्तलिखित ग्रंथों की विभागीय नोंहा का नक्शा ३६४

मध्य भारत का जैन पुरातत्व ३६६

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३७२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३८०

भगवान पार्श्वनाथ, अन ई जामब द

हिन्दी जैन भक्त कवियों की मधुर भावना

श्री रंजन सूरिदेव

हिन्दी जैन भक्ति-काव्य शान्तरस का मूर्त्त रूप है। इसलिए, यह स्वाभाविक है कि जैन भक्त कवि ज्ञान और वैराग्य की ही अहोरात्र चर्चा करें। किन्तु यह बात बिल्कुल सही नहीं है कि जैन भक्ति-काव्य केवल ज्ञान मार्गी शाखा की प्रखरता और रूक्षता से ही भरा हुआ है, अपितु मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने वालों ने जैन भक्ति काव्य में पुष्टि मार्गी माधुर्य भावना के प्राचुर्य को भी प्राप्त किया है। साहित्येतिहासिक दृष्टि से हिन्दी जैन भक्ति काव्य की माधुर्य धारा विक्रम की १५ वीं शती से अधिक वेग से प्रवाहित दृष्टिगत होती है।

अभयदेव सूरी की परम्परा में तिलक सूरि के शिष्य राजशेखर सूरि (वि० सं० १४०५) ने अपनी प्रसिद्ध हिन्दी-कृति 'नेमिनाथ फागु' में राजिमती (राजुल) के वर्णन में उसकी शृंगार मधुर मूर्त्ति की बड़ी सरसता के साथ अवतारणा की है। 'नेमीनाथ फागु' में बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और उनकी भावी पत्नी की वेधक कथा का काव्यमय चित्रण किया गया है। नेमिनाथ कृष्ण के छोटे भाई थे। जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की कन्या राजिमती (राजुल) के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ। बारात जब राजुल के दरवाजे पर लगी, तब वहाँ उन्हें बारातियों के भोज्य स्वागत के लिए एकत्र किए गए पशुओं के करुण क्रन्दन सुनाई पड़े। उनका हृदय दयार्द्र हो आया। उन्होंने विवाह से विरत होकर वैराग्य ले लिया और गिरिनार-पर्वत पर तप करने चले गए। राजुल ने भी दूसरा विवाह नहीं किया और नेमिनाथ के भक्तिपूर्ण विरह में सारा जीवन बिता दिया।

नेमिनाथ फागु २७ पद्यों का छोटा-सा खण्ड-काव्य है। इसमें नेमिनाथ की भक्ति की प्रधानता है। दृश्यों को कवि ने बड़ी रसिकता और व्युत्पन्नता से शब्दित किया है। विवाह के लिए सज्जित राजुल का एक सरस चित्र—

किम - किम राजलदेवि तणउ सिणगारु भणेवउ।
चंपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुम कस्तूरी सारी।
सीमंतइ सिंदूररेह मोतीसरि सारी॥
नवरंगि कुंकुमि तिलय किय रयण तिलउ तसु भाले।
मोती कुंडल कन्नि थिय विंबालिय कर जाले॥
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुँह कमलि तंबोलो।
नागोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोलो॥

मरगद जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला।
करे कंकण मणिवलउ चूड खलकावइ बाला॥
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुणएँ कडि घाघरियाली।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमिएँ पयनेउर झुयली॥
नहि अलत्तउ बलवत्तउ से अंसुय किमिसि।
अखंडियाली रायमइ पिउजो अइ मनरसि॥

अर्थात्, राजुल चम्पक कली की भाँति गोरी है। उसके शरीर पर चन्दन का लेप है। सीमन्त में सिन्दूर की रेखा खिंची है। नवरंगी कुंकुम तिलक भाल पर विराजमान है। मोतियों के कुण्डल कान में सुशोभित है। मुख-कमल पान की लालिमा से रंजित है। कण्ठ में हार विलस रहा है। कंचुकी में कसा यौवन और उस पर पड़ी मनोज्ञमाला, हाथों में कंकण और खनकती मणिमय चूड़ियों में जैसे आज भी राजुल का विवाहोत्सव फूट पड़ता है। उसकी घाघरी की रुनझुन और पायजेब की रिमझिम तो आज भी कानों में पड़ रही है। उसकी रागारुण आँखें मन में विराजित अपने पति को देख रही है।

हिन्दी जैन भक्ति काव्य के विद्वान डा॰ प्रेम सागर जी जैन ने कहा है कि राजुल की यह शोभा 'राधासुधानिधि' में वर्णित राधा की शोभा से बहुशः साम्य रखती है। रचना प्रकार की दृष्टि से भी राजुल वर्णन परक उपर्युक्त पद्य का स्वर उसी प्रकार की सरसता से आप्लुत है जिस प्रकार 'राधासुधानिधि' के राधा वर्णन परक पदों का। मानों, साक्षात् राधा ने अपनी मोहिनी मूर्त्ति राजुल में अन्तर्निविष्ट कर दी हो और राजुल राधा की प्रतिमूर्त्ति बन गई हो एवं उसकी रूपमाधुरी विश्व के कण-कण में जा रमी हो।

नेमिनाथ के विवाह-विमुख हो गिरिनार पर चले जाने की बात सुनकर राजुल बेचैन हो उठी। उस समय की राजुल की कातरता और आतुरता सत्रहवीं शती के हेम विजय (वि० सं० १६७०) की लेखनी के द्वारा बड़ी निपुणता से शब्दित हुई है। राजुल बेचैन होकर गिरिनार की ओर अकेली ही दौड़ पड़ी। यहाँ लोक-मर्यादा का बन्धन उसे न बाँध सका। राजुल की दृष्टि में वह नेमिनाथ की पत्नी थी। भारतीय कन्या एक बार पति चुनती है, बार-बार नहीं। इसी कारण सखियों के मना करने पर भी किसी की परवाह किए बिना वर्षा की भयंकरता की उपेक्षा करती हुई उस ओर दौड़ गयी जिस ओर उसका गन्तव्य था।

एतद्विषयक दो मधुमय पद्य दृष्टव्य और ध्यातव्य है—

कहि राजमती सुमती सखियान कूं,
एक खिनेक खरी रहुरे।
सखिरी सगिरी अंगुरी मुहि बाहि,
करति बहुत इसे निहुरे॥
अबही तबही कबही जबही,
जदुराय कूं जाय इसी बहुरे।
मुनि हेम के साहिब नेमजी हों,
अब तोरन तें तुम्ह क्यूँ बहुरे॥
घनघोर घटा उनई जु नई,
इततैं उततैं चमकी बिजली।
'पिउरे पिउरे' पपिहा बिलबिलाति जु,
मोर किंगार करंति मिली॥
बिच बिन्दु परे दृग आंसु झरैं,
दुनि धार अपार इसी निकली।
मुनि हेम के साहब देखन कूं,
उग्रसेन लली सु अकेली चली॥

मिलन आतुरता के इस चित्र की तुलना गो० तुलसीदास की 'उमगि नदी अम्बुधि पहँ आई' से बहुत अच्छी जमेगी। सचमुच, राजुल रूप नदी का नेमिनाथ रूप समुद्र की ओर आवेग के साथ प्रवाहित होना बड़ा ही तीव्र और वेधक है।

संवत् १५२१ के जैन भक्त कवि लघुराज (उपनाम लावण्य समय) की कवित्व शक्ति की ख्याति चतुर्दिग्व्यापिनी थी। इनके पूर्वज अहमदाबाद के निकटस्थ पाटणनगर के आदिवासी थे। इन्होंने अनेक भक्तिपरक कृतियों की सर्जना की। कवि ने अपनी विक्रमाब्द १५६८ की एक प्रसिद्ध कृति 'विमल प्रबन्ध' में लिखा है कि सोलहवें वर्ष में मुझपर सरस्वती की कृपा हुई और मुझमें कवित्व शक्ति का जन्म हुआ। फलतः मैं छन्द, कवित्त, चौपई, रास और अनेक प्रकार के गीत एवं राग-रागिनियों की रचना करने में समर्थ हो सका। लघुराज ने सरस्वती का रसमय गीत 'रंग रत्नाकर नेमिनाथ प्रबन्ध' में कई पद्यों में गाया है। निम्नांकित पद्य में सरस्वती की आंगिक सौन्दर्य माधुरी का मांसल चित्रण द्रष्टव्य है।

तुझ तनु मोहई उज्जवल कंति,
    पूनिम ससिहर परिझलकंति।
पथ धमधम घुग्घर धमकंति,
    हंसगमणि चालइ चमकंति॥
चालइ चमकंति, जगि जयवंती,
    वीणा पुस्तक पवर धरई।
करि कमल कमंडल काने कुंडल,
    रविमंडल परिकंति करइ॥

लघुराज ने सरस्वती को 'सरसवचना' और 'दयामयी देवी' माना है और इनका विश्वास है कि सरस्वती के विमल चरणों की वन्दना मनुष्य की दुर्मति दूर कर उसे सुमति प्रदान करती है।

सोलहवीं शती के समर्थ राजस्थानी कवि दीहल (वि० सं० १५७५) अपनी रसमयी भक्ति के लिए परम प्रख्यात् थे। इन्होंने अनेक कृतियों की रचना की थी! शोध में प्राप्त इनकी विप्रलम्भ शृंगार विषयक एक गीतकृति 'पंच सहेली गीत' की मधुरता मन को रमानेवाली है। इसमें ६८ पद्य हैं। मालिन, तमोलिन, छीपिन, कलालिन और सुनारिन ये पाँच सहेलियाँ हैं। पाँचों ने अपने-अपने प्रिय के विरह का वर्णन किया है। वस्तुतः वह विरह परमात्मा का ही है। प्रिय-मिलन होता है और सबको परमानन्द की प्राप्ति होती है।

मालिन का पति उसे भरे यौवन में छोड़कर कहीं चला गया है। उसका दुःख अनन्त है। कमल जैसा मुँह मुरझा गया है। और शिशिर की वनराजि जैसा शरीर सूख गया है। प्रियतम के बिना उसे एक-एक क्षण एक-एक बरस के बराबर लगता है। जिस शरीर रूपी वृक्ष पर यौवन रस से भरे स्तन-रूपी दो नारंगी लगे थे, वह विरह की अग्नि में सूखने लगा है। और सींचने वाला दूर है। उसने चंपा की पंखुड़ियों से एक नया हार गूंथा था। यदि वह इसे पति के बिना पहने तो वह अंगों को अंगारा जैसा लगे। मूल पद्य इस प्रकार है—

कमलवदन कुमलाइया सूकी रूख वनराइ।
बिन पीया रइ एक षिन बरस बराबरि जाइ॥
तन तरवर फल लग्गीया दुइ नारिंग रसपूरि।
सूकन लागा विरह झल सींचन हारा दूरि॥
चम्पा केरी पंखडी गूंथ्या नवसर हार।
जइ इहु परिरउ पीव बिन लागइ अंग अंगार॥

इसी प्रकार पति के बिना विरह ने तमोलिन की चोली के भीतर घुसकर उसके शरीर को आहत किया है। बसन्त की रात काटना दूभर हो गया है। ग्रीष्म के सन्तप्त दिन भी कैसे कटें, छाया देनेवाला पति परदेश चला गया है। छीपिन के हृदय की पीड़ा को दूसरा जान ही नहीं सकता। उसके तन रूप कपड़े को, विरह रूप दरजी, दुःख रूप कैंची से दिन-रात काटता चला जा रहा है। कलालिन की देह पर उन्मद यौवन की फागवाली मधु ऋतु बिखरी हुई है। किन्तु, उसका पति दूर है, अतः वह किसके साथ होली खेले। उसे तो केवल अपने अधूरे अरमानों के साथ बिसूर-बिसूरकर मरना है। सुनारिन विरह रूप समुद्र में इस प्रकार डूब गई है कि उसकी थाह ही नहीं मिलती। उसके प्राणों को मदन-रूप सुनार ने हृदय रूप अंगीठी पर विरह रूप आग में जला-जलाकर कोयला कर दिया है

कतिपय दिनों के बाद फिर वे पाँचों सहेलियाँ मिलीं। उनके चेहरे खिले हुए थे। उनके प्रियतम आ गए थे और उनके दिन सुख से बीत रहे थे। तमोलिन का मिलन सुख द्रष्टव्य है—

चोली खोल तमोलनी काढ्या गात अपार।
रंग कीया बहु प्रीयसूं नयन मिलाई तार॥

तमोलिन का यह मिलन कबीर के विख्यात् रहस्यवाद की तुरीयावस्था है। कवि छीहल ने इसका वर्णन जिस रूपक के सहारे किया है, वह आनन्द कादम्बिनी की धारा में पाठकों को मग्न करने वाला है। मधुर भावना की चरम परिणति इसी 'लस आलिंगन' या 'एकांगीभवन' में है।

सत्रहवीं शती के जहांगीर शासन कालीन कवि भगवतीदास ने सं० १६८४ में 'वृहत्सीतासतु' का निर्माण किया था। उसीका संक्षिप्त रूपान्तर 'लघु-सीतासतु' के नाम से प्रस्तुत किया। इसमें रावण की पत्नी मन्दोदरी और राम प्रिया सीता संवाद बड़ी ही रसात्म शैली में दिया गया है। इससे कवि की माधुरी भावना का संकेत मिलता है। मन्दोदरी सीता को रावण के साथ रमण के लिए उत्सुक करती है और सीता अपने हिमशैल से अचल सतीत्व पर दृढ़ रहती है। यह संवाद 'बारह मासा' के रूप में लिखा गया है। आषाढ़ के संवाद की कतिपय पंक्तियाँ—

मन्दोदरी :

तब बोलई मन्दोदरि रानी,
रुति अषाढ़ पनघट घहरानी।

पीय गए ते फिर घर आवा,
पामर नर नित मंदिर छावा ॥
लवहिं पपीहे दादुर मोरा,
हियरा उमग धरत नहिं भोरा।
बादर उमहि रहे चौपासा,
तिय पिय बिनु लिहिं उसन उसासा ॥
नन्हीं बूंद झरत झर लावा,
पावस नभ आगमु दरसावा।
दामिनि दमकत निरा अंधियारी,
बिरहिनि काम बान उरिमारी ॥
भुगवहिं भोग सुनहिं सिखमोरी,
जानत काहे भई मति भोरी।
मदन रसाइन हुइ जग सारू,
संजम नेमु कथन बिवहारू ॥
जब लगु हंस सरीर महिं,
तब लगु कीजइ भोगु।
राज तजहिं भिक्षा भमहिं,
इउं भूला सब लोगु ॥

सीता :

सुकनासिक मृगदग पिकबइनी,
जानुकि बचन लवइ सुखि रइनी।
अपना पिय पइ अमृत जानी,
अवर पुरुष रवि दुग्ध समानी ॥
पिय चितवनि चितु रहइ अनंदा,
पिय गुन सरत बढ़त जस कंदा।
प्रीतम प्रेम रहइ मनपूरी,
तिनि बालिम संगु नाहिं दूरी ॥

सुख चाहइ ते बावरी, परपति संग रति मानि।
जिउ कपि सीत बिथा मरइ, तापत गुन्जा आनि ॥
तृसना तो न बुझाइ, जलु जब खारी पीजिए।
मिरगु मरइ पपि धाइ, जल धोखइ थलि रेतकइ ॥

यह वर्णन मधुर होते हुए भी मनोवृत्ति को सम्यक् चारित्र की ओर ले जाने वाला है।

जैनाचार संयमनया अवदमन के द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने का आदेश देता है। यही कारण है कि परम्परया अधिकांश हिन्दी के जैन कवि माधुर्य भावना का प्रत्यक्ष वर्णन करने से हिचकते थे। इसलिए जैन काव्य में भक्ति के मधुर पक्ष का प्रायशः अभाव है। ऐसे कवि अंगुलिगण्य ही हैं, जिन्होंने खुलकर मधुर भावना का समीचीन चित्रण किया हो। जो हैं भी उन्होंने प्रत्यक्ष वर्णन न कर विभिन्न रूपकों का आश्रय लिया है।

पन्द्रहवीं शती के जिनोदयसूरि के शिष्य मेरुनन्दन उपाध्याय ने 'जिनोदय सूरि विवाहलउ' नामक काव्य में कुछ इसी प्रकार रूपकाश्रित वर्णन किए हैं। हालांकि इस काव्य को सही मायने में ललित और सरस काव्य कहा जाएगा। वर्णन वैचित्र्य और पद लालित्य पदे-पदे परिलक्षित होता है, जैसे—

अत्थि गूजर धरा सुन्दरी सुंदरे, उखरे रयण हारो वमाणं।
लच्छि केलिहरं नयरू पल्हणपुरं, सुरपुरं जेम सिद्धाभिहाणं ॥

अर्थात् गूर्जरधरा रूपी सुन्दरी के हृदय पर रत्नों के हार की भाँति पल्हणपुर विराजमान है, जो लक्ष्मी की क्रीड़ाभूमि है और सिद्धों से प्रतिष्ठित स्वर्गपुरी जैसी शोभित है।

इस काव्य के कथानायक सेठ रुद्रपाल के पुत्र समरकुमार को गुरुवर श्री जिन कुशल सूरि दीक्षा देना चाहते हैं। इसीको ललित काव्य की रसमयी रूपकाश्रित भाषा में इस प्रकार कहा गया है—

अह सयल लक्खणं जाणि सुवियक्खणं,
सूरि दट्ठूण समरं कुमारं।
भविय तुह नंदणो नयण आनंदणो,
परिणओ अम्ह दिक्खा कुमारिं ॥

अर्थात् सूरिजी ने समर को देखकर कहा कि यह तुम्हारा समरकुमार सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों से युक्त है और सुविचक्षण भी है। नेत्रों को आनन्द देने वाले अपने इस पुत्र का विवाह मेरी दीक्षाकुमारी के साथ कर लो।

सही बात तो यह है कि हिन्दी के सभी जैन कवि प्रायः भक्त ही होते थे, गृहस्थ नहीं के बराबर। इसलिए उन्होंने दाम्पत्यरति के सम्बन्ध को भौतिक धरातल पर नहीं उतारा। सब कुछ आध्यात्मिक स्तर की ही बात रही। उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम को भी विलासिता के स्पर्श से सतर्कता पूर्वक अलग रखा गया। उपमा और उत्प्रेक्षाएँ भी अधिकांश ही रही। इन कवियों ने विलासिता या मधुर भावना को ही भक्ति के क्षेत्र में अशांति का कारण माना, फिर भी ये मधुर भावना से अछूते रहे, ऐसा भी नहीं ही कहा जा सकता है।

हस्तलिखित ग्रन्थों की विभागीय नोंधा का नक्शा

Columns for a Detailed Register of Handwritten Manuscripts

श्री जौहरीमल पारख

1. भाग (Part) अर्थात् 2 J 1 आदि ।
2. विभाग (Section) अर्थात् 2 J 1. 1 आदि ।
3. अनुक्रम (Sectional Serial No.).
4. ग्रन्थ का नाम (Name & Title of the Work).
5. प्रकार (Nature & Type) अर्थात् मूल या टब्बा या वृत्ति या अवचूरी, बालावबोध आदि ।
6. ग्रन्थकार, वृतिकार आदि का नाम, गुरु, आम्नाय आदि परिचय (Name & where abouts of Author/Exegesisor etc).
7. रचनावर्ष (Year of Composition).
8. प्रतिलेखनवर्ष (Year of writing the Manuscript).
9. प्रतिलेखन स्थल (Place of ,, ,, ,,).
10. लिपिक (Name of the Scribe).
11. भाषा (Language).
12. स्वरूप (Form) अर्थात् गद्य, पद्य, चंपू, नाटक आदि ।
13. परिमाण (Extent) अर्थात् ग्रंथ के श्लोक, गाथा, सर्ग आदि की संख्या ।
14. पन्ने (Number of Leaves).
15. पन्नों का नाप—लंबाई चौड़ाई सेन्टीमीटरों में (Measurement of Leaves—Length & Breadth in Centemetres).
16. पंक्ति प्रति पृष्ठ (Lines per Page).
17. अक्षर प्रति पंक्ति (Letters per Line).
18. प्रति स्रोत (Source from where Received).
19. दशा (Condition) अर्थात् जीर्ण, सुन्दर, शुद्धतर आदि।
20. पूर्ण/अपूर्ण (Whether Complete or Leaves are Missing).
21. मुद्रित/अमुद्रित (Whether Published or Unpublished till todate).
22. पुरातत्त्व विभाग नोंधबीगत, यदि हो तो (Details of Registration with Archaeological Deptt. if any).

23. देय/अदेय (Whether can be issued or not).
24. संक्षिप्त विषय संकेत (Subject in brief).
25. विशेष (Remark).
26. भंडार क्रम (Store-Index) अर्थात् बस्ता/अलमारी की संख्या।
27. सामान्य क्रमांक (General Index Number).

—Specimen Columns for a detalied Register of Printed books—

1. Part
2. Section
3. Sectional Serial No.
4. Title of the Book
5. Name of the Author/Editor/Exegesisor etc.
6. Name & Address of the Publisher
7. Year of Publication
8. Edition
9. Size
10. Pages
11. Price
12. Language
13. Whether can be issued or not
14. Remarks
15. General Index No.
16. Subject in brief

मध्य भारत का जैन पुरातत्व

श्री परमानन्द जैन

[पुर्वानुवृत्ति]

बाबा बावड़ी और जैन मूर्त्तियाँ—ग्वालियर से लश्कर जाते समय बीच में एक मील के फासले पर बाबा बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध एक स्थान है। सड़क से करीब डेढ़ फर्लांग चलने और कुछ ऊँचाई चढ़ने पर नीचे पहाड़ की विशाल चट्टानों को काटकर बहुत-सी पद्मासन तथा कायोत्सर्ग मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। ये मूर्तियाँ स्थापत्य कला की दृष्टि से अनमोल हैं। इतनी बड़ी पद्मासन मूर्तियाँ मेरे देखने में अन्यत्र नहीं आईं। बावड़ी के बगल में दाहिनी ओर एक विशाल खड्गासन मूर्ति है। उसके नीचे एक विशाल शिलालेख भी लगा हुआ है। जिससे मालूम होता है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा वि० सम्बत् १५२५ में तोमर वंशीय राजा डूंगरसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह के राज्यकाल में हुई है।

खेद है कि इन सभी मूर्तियों के मुख प्रायः खंडित हैं। यह मुस्लिम युग के धार्मिक विद्वेष का परिणाम जान पड़ता है। इन मूर्त्तियों की केवल मुखाकृति को ही नहीं बिगाड़ा गया किन्तु किसी-किसी मूर्त्ति के हाथ पैर भी खण्डित कर दिए गए हैं। इतना ही नहीं, विद्वेषियों ने कितनी ही मूर्त्तियों को गारा मिट्टी में भी चिनवा दिया था और सामने की विशाल मूर्त्ति को गारा मिट्टी से छापकर उसे एक कब्र का रूप भी दे दिया था। परन्तु सितम्बर सन् १८४७ के दंगे के समय उनसे उक्त स्थान की प्राप्ति हुई है।

संग्रहालय—ग्वालियर के किले में एक अच्छा संग्रहालय है जिसमें हिन्दू, जैन और बौद्धों के प्राचीन अवशेषों, मूर्त्तियों, शिलालेखों और सिक्कों आदि का संग्रह किया गया है। इसमें जैनियों की गुप्तकालीन खड्गासन मूर्त्ति भी रखी हुई है, जो कलात्मक है और दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट करती है। इसी में सं० १३१८ का भीमपुर का महत्वपूर्ण शिलालेख भी है।

ग्वालियर के आसपास उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री :

दूब कुण्ड के शिलालेख—दूब कुण्ड का दूसरा नाम 'चडोभ' है। यह स्थान किसी समय जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ कच्छपघट (कछवाहा) वंश के शासकों के समय में भी जैन मन्दिर मौजूद थे और

नूतन मन्दिरों का भी निर्माण हुआ था, साथ ही शिलालेख में उल्लिखित लाड-बागड गण के देवसेन, कुलभूषण, दुर्लभसेन, अम्बरसेन और शान्तिसेन इन पाँच दिगम्बर जैनाचार्यों का समुल्लेख पाया जाता है जो उक्त प्रशस्ति के लेखक एवं शान्तिसेन के शिष्य विजयकीर्ति के पूर्ववर्ती हैं। यदि इन पाँचों आचार्यों का समय १२५ वर्ष मान लिया जाए जो अधिक नहीं है तो उसे ११४५ में से घटाने पर देवसेन का समय १०२० के लगभग आ जाता है। ये देवसेन अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे, और लाड-बागडगण के उन्नत रोहणाद्रि थे, विशुद्ध रत्नत्रय के धारक थे और समस्त आचार्य इनकी आज्ञा को नत-मस्तक हो हृदय में धारण करते थे।[१५] उक्त दूब कुण्ड में एक जैन स्तूप पर सं० ११५२ का एक और शिलालेख अंकित है जिसमें सं० ११५२ की वैशाख सुदी ५ को काष्ठा संघ के महान् आचार्य देवसेन की पादुका-युगल उत्कीर्ण है।[१६] यह शिलालेख तीन पंक्तियों में विभक्त है। इसी स्तूप के नीचे एक भग्न मूर्ति उत्कीर्ण है जिस पर 'श्रीदेव' लिखा है जो अधूरा नाम मालूम होता है। पूरा नाम श्री देवसेन रहा होगा। ग्वालियर में भट्टारकों की प्राचीन गद्दी रही है और उसमें देवसेन, विमलसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, यशःकीर्ति, मलयकीर्ति और गुणभद्रादि अनेक भट्टारक हुए हैं। इनमें देवसेन, यशःकीर्ति, गुणभद्र ने अपभ्रंश भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

दूब कुण्ड का यह शिलालेख[१७] बड़े महत्व का है; कच्छपघट (कछवाहा) वंश के राजा विजयपाल के पुत्र विक्रम सिंह के राज्य में यह लेख लिखा गया है। यह विजयपाल वही हैं जिनका वर्णन बयाना के वि० सं० ११०० के शिलालेख में किया गया है। बयाना दूब कुण्ड से ८० मील उत्तर में है। इस लेख में जैन व्यापारी रिषि और दाहड़ की वंशावली दी है। जायस-वंश में सूर्य के समान प्रसिद्ध वनिक सेठ जासूक था, जो सम्यग्दृष्टि था, जिनेन्द्र पूजक था, चार प्रकार के पात्रों को श्रद्धापूर्वक दान देता था। उसका पुत्र जयदेव था, वह भी जिनेन्द्रभक्त और निर्मल चरित्र का धारक था। उसकी

---

१५ आसीद्विशुद्धतरबोधचरित्रदृष्टिः निःशेषसूरिनतमस्तकधारिताज्ञः।
श्रीलाटवागड गणोन्नतरोहणाद्रि-माणिक्यभूतचरितो गुरुदेवसेनः॥

१६ सं० ११५२ वैशाख सुदी पञ्चम्यां श्री काष्ठासंघ महाचार्यवर्य श्री देवसेन पादुकायुगलम्।

१७ See Archaeological Survey of India, Vol. 2, p. 102.

यशोमती नामक पत्नी से ऋषि और दाहड दो पुत्र हुए थे। ये दोनों ही धनोपार्जन में कुशल थे। इनमें ज्येष्ठ पुत्र ऋषि को राजा विक्रम ने श्रेष्ठीपद प्रदान किया था और दाहड ने उच्च शिखरवाला यह सुन्दर मन्दिर बनवाया था। जिसमें कूकेक, सूर्यट, देवघर और महीचन्द आदि विवेकी चतुर श्रावकों ने सहयोग दिया था और राजा विक्रमसिंह ने जिन मन्दिर के संरक्षण, पूजन और जीर्णोद्धार के लिए दान दिया था।[१८] यह लेख जैसवाल जाति के लिए महत्वपूर्ण है।

ग्वालियर स्टेट के ऐसे बहुत से स्थान हैं जिनमें जैनियों और बौद्धों तथा हिन्दुओं की पुरातन सामग्री पाई जाती है। भेलसा (विदिशा), वेसनगर, उदयगिरि, बडोर, बरो (बडनगर), मंदसौर, नरवर, ग्यारसपुर सुहानियाँ, गूडर, भीमपुर, पद्मावती, जोरा चंदेरी, मुरार आदि अनेक स्थान हैं। इनमें से यहाँ उदयगिरि, नरवर और सुहानियाँ के सम्बन्ध में संक्षिप्त प्रकाश डाला जाएगा।

उदयगिरि—भेलसा जिले में उदयगिरि नामक एक प्राचीन स्थान है। भेलसा से ४ मील दूर पहाड़ी में कटे हुए मन्दिर हैं। पहाड़ी पौन मील के करीब लम्बी और ३०० फुट की ऊँचाई को लिए हुए है। यहाँ गुफाएँ हैं जिनमें प्रथम और २० वें नम्बर की गुफा जैनियों की है। २०वीं गुफा जैनियों के तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ की है। उसमें सन् ४२५-४२६ का गुप्तकालीन एक अभिलेख है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है—

"सिद्धों को नमस्कार! श्री संयुक्त गुण समुद्र गुप्तान्वय के सम्राट् कुमारगुप्त के वर्द्धमान राज्य शासन के १०६वें वर्ष और कार्तिक महीने की कृष्ण पंचमी के दिन गुहाद्वार में विस्तृत सर्पफण से युक्त शत्रुओं को जीतने वाले जिनश्रेष्ठ पार्श्वनाथ जिनकी मूर्ति शम-दमवान शंकर ने बनवाई। जो आचार्य भद्रान्वय के भूषण और आर्य कुलोत्पन्न आचार्य गोशर्म मुनि के शिष्य तथा दूसरों द्वारा अजेय रिपुघ्न मानी अश्वपति भट संघिल और पद्मावती के पुत्र शंकर इस नाम से लोक में विश्रुत तथा शास्त्रोक्त यतिमार्ग में स्थित था और वह उत्तर कुरुवों के सदृश उत्तर प्रान्त के श्रेष्ठ देश में उत्पन्न हुआ था, उसके इस पावन कार्य में जो पुण्य हुआ हो वह सब कर्म रूपी शत्रु समूह के क्षय के लिए हो। वह मूल लेख इस प्रकार है—

१. नमः सिद्धेभ्यः (II) श्री संयुतानां गुणतोयधीनां गुप्तान्वयानां नृपसत्तमानाम्

[१८] एपिग्राफिका इन्डिका, जिल्द २, पृष्ठ २३२-४०।

२. राज्ये कुलस्याधि विवर्द्धमाने षड्भियुतैवर्षशतेथ मासे (II) सुकार्तिके बहुल दिनेथ पंचमें

३. गुहामुखे स्फटविकटोत्कटामिमां जितद्विषो जिनवर पार्श्वसंज्ञिकां, जिनाकृति शम-दमवान।

४. चीकरत् (II) आचार्यभद्रान्वयभूषणस्य शिष्यो ह्यसावार्य्यकुलोद्गतस्य आचार्य गोश

५. र्म्म मुनेस्सुतास्तु पद्मवतावश्वपते र्भटस्य (II) परैरजेयस्य रिपुघ्न मानिनस्स संघिल

६. स्येतित्यभिविश्रुतो भुवि स्वसंज्ञय शंकरनामशब्दितो विधानयुक्तं यतिमार्गमस्थितः (II)

७. स उत्तराणां सदृशे कुरूणां उदग्दिशा देशवरे प्रसूतः

८. क्षयाय कर्म्मारिगणस्य धीमान् यदत्र पुण्यं तदपाससर्ज्ज (II)

—फ्लीट, गुप्त अभिलेख, पृ० २५८

इस लेख में उल्लिखित आचार्य भद्र और उनके अन्वय में प्रसिद्ध मुनि गोशर्म कहाँ के निवासी थे और उनकी गुरु परम्परा क्या है यह कुछ मालूम ही नहीं हो सका।

नरवर—एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। नरवर को 'नलगिरि और नलपुर' भी कहा जाता था।[१९] इसका इतिवृत्त ग्वालियर दुर्ग के साथ सम्बन्धित रहा है। विक्रम की १० वीं शताब्दी के अन्त में दोनों दुर्ग कछवाहा राजपूतों के अधिकार में चले गए थे। विक्रम ११८६ में उस पर प्रतिहारों का अधिकार हो गया था। लगभग १ शताब्दी शासन करने के बाद सन् १२३२ में अल्तमश ने ग्वालियर को जीत लिया, तब प्रतिहारों ने नरवर के दुर्ग में शरण ली। विक्रम की १३वीं शताब्दी के अन्त में दुर्ग को

[१९] अस्य प्रतापकनकैरमलैर्यशोभि—र्मुक्ताफलैरखिलभूषणविभ्रमाया।
पादोनलक्षविषयक्षितिपक्ष्मालाक्ष्या, भास्ते पुरं नलपुरं तिलकायमानम् ॥

—भीमपुर शिलालेख १४

नलगिरि का उल्लेख कचेरीवाले अभिलेख में मिलता है, यथा—
तत्राभवन्नृपतिरुग्रतरप्रतापः श्रीचाहडस्त्रिभुवनप्रथमानकीर्तिः।
दोर्दण्डचंडिमभरेण पुरः परेभ्यो येनाहृता नलगिरिप्रमुखा गरिष्ठाः ॥

—कचेरी अभिलेख सं० १३१६

चाहडदेव ने प्रतिहारों से जीत लिया, जो नरवर के राजपूत कहलाते थे। भीमपुर के वि० सं० १३१८ के अभिलेख में इस वंश के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ की हैं और उसका यज्वपाल नाम सार्थक बतलाया है। तथा कचेरी के सं० १३३९ के शिलालेख में जयपाल से उद्भूत होने से इस वंश को 'जज्जयेल' लिखा है।

नरवर और उसके आस-पास के उपलब्ध शिलालेखों और सिक्कों से ज्ञात होता है कि चाहड देव के वंश में चार राजा हुए हैं। चाहड देव, नरवर्म देव, आसल्ल देव, गोपाल देव और गणपति देव। चाहड देव ने नलगिरि और अन्य बड़े पुर शत्रुओं से जीत लिए थे। नरवर में इसके जो सिक्के मिले हैं उसमें सं० १३०३ से १३११ तक की तिथि मिलती है। चाहड के नाम का एक लेख सं० १३०० का उदयेश्वर मन्दिर की पूर्वी महराव पर मिलता है। उसमें उसके दान का उल्लेख है। नरवर्म देव भी बड़ा प्रतापी और राजनीतिज्ञ राजा था, जैसा कि उसके निम्न वाक्य से प्रकट है—

'तस्मादनेकविधविक्रमलब्धकीर्तिः पुण्यश्रुतिः समभवन्नरवर्मदेवः'

वि० सं० १३३८ के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि नरवर्म देव ने धार (धारा नगरी) के राजा से चौथ वसूल की थी। यद्यपि इस वंश की परमारों से अनेक छेड़छाड़ होती रहती थी, किन्तु उसमें नरवर्मदेव ने सफलता प्राप्त की थी। नरवर्मदेव के बाद इसका पुत्र आसल्लदेव गद्दी पर बैठा। इसके समय के दो शिलालेख वि० सं० १३१८ और १३२७ के मिलते हैं। आसल्लदेव के समय उसके सामन्त जैत्रसिंह ने भीमपुर में एक जिन मन्दिर का निर्माण कराया था। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा संवत् १३१८ में नागदेव द्वारा सम्पन्न हुई थी। इसके समय में भी जैन धर्म को पनपने में अच्छा सहयोग मिला था। जैत्र सिंह जैन धर्म का संचालक और श्रावक के व्रतों का अनुष्ठाता था। आसल्ल देव का पुत्र गोपालदेव था। इसके राज्य का प्रारंभ सं० १३३६ के बाद माना जाता है। इसके चंदेल वंशी राजा वीर वर्मन के साथ युद्ध हुआ था। जिसमें इसके अनेक वीर योद्धा मारे गए थे।

गणपति देव के राज्य का उल्लेख सं० १३५० में मिलता है। यह सं० १३४८ के बाद ही किसी समय राज्याधिकारी हुआ होगा। सं० १३५५ अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसने चन्देरी के दुर्ग पर विजय प्राप्त की थी क्योंकि सं० १३५६-५७ के सती स्तम्भों में इसके राज्य का उल्लेख है। जान पड़ता है कि मुसलमानों की विजय वाहिनी से चाहडदेव का वंश समाप्त हो गया।

जैनत्व की दृष्टि से नरवर के किले में अनेक जैन मूर्त्तियाँ खण्डित-अखण्डित अवस्था में प्राप्त हैं। किले में इस समय ४ मूर्त्तियाँ अखण्डित हैं जिनपर १२१३ से १३४८ तक के लेख पाए जाते हैं।

१. सं० १२१३ आषाढ़ सुदी ६। २. सं० १३१६ ज्येष्ठ वदी ५ सोमे। ३. सं० १३४० वैशाख वदी ७ सोमे। ४. सं० १३४८ वैशाख सुदी ५ शनौ।

ये सब मूर्त्तियाँ सफेद संगमरमर पाषाण की हैं। खण्डित मूर्त्तियों की संख्या अधिक पायी जाती हैं। नगर में भी अच्छा मन्दिर है और जैनियों की बस्ती भी है। नगर के आस-पास के ग्रामों आदि में भी जैन अवशेष पाए जाते हैं। जिससे वहाँ जैनियों के अतीत गौरव का पता चलता है।

नरवर से ३ मील की दूरी पर 'भीमपुर' नाम का एक ग्राम है। जहाँ जज्जयेल वंशी राजा आसल्लदेव के एक जैन सामन्त जैत्रसिंह रहते थे। उन्होंने जिन-भक्ति से प्रेरित होकर वहाँ एक विशाल जैन मन्दिर बनवाया था और उस पर २३ पंक्त्यात्मक करीब ६०-७० श्लोकों के परिमाण को लिए हुए विशाल शिलालेख लगवाया था, जो अब ग्वालियर पुरातत्व विभाग के संग्रहालय में मौजूद है। इस लेख में उक्त वंश के राजाओं का उल्लेख है। जैत्रसिंह की धार्मिक परिणति का भी वर्णन है। और नागदेव द्वारा उसकी प्रतिष्ठा के सम्पन्न होने का उल्लेख है। सं १३१८ का यह शिलालेख अभी तक पूरा प्रकाशित नहीं हुआ। यह लेख जैनियों के लिए महत्वपूर्ण है। पर ऐसे कार्यों में जैन समाज का योगदान नगण्य है।

सुहानियां—यह स्थान भी पुरातन काल में जैन संस्कृति का केन्द्र रहा है और वह ग्वालियर से उत्तर की ओर २० मील, तथा कटवर से १४ मील उत्तर पूर्व में अहसन नदी के उत्तरी तट पर स्थित है। कहा जाता है कि यह नगर पहले खूब समृद्ध था और बारह कोश जितने विस्तृत मैदान में आबाद था। इसके चार फाटक थे, जिनके चिह्न आज भी उपलब्ध होते हैं। सुना जाता है कि इस नगर को राजा सूरसेन के पूर्वजों ने बसाया था! कनिंघम साहब को यहाँ वि० सं० १०१३, १०३४ और १४६७ के मूर्त्तिलेख प्राप्त हुए थे।

इस लेख में मध्य भारत के कुछ स्थानों का जैन पुरातत्व का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। उज्जैन, धारा नगरी और इनके मध्यवर्ती भू-भाग अर्थात् समूचे मालव प्रदेश का जो जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है, परिचय देने में एक बड़ा ग्रन्थ बन जायगा।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इस भाँति पश्चात्ताप रूपी जल में विषाद रूपी कर्दम को धोकर राजा भरत ने बाहुबली के पुत्र चन्द्रयशा को सिंहासन पर बैठाया। चन्द्रयशा से चन्द्रवंश का प्रारम्भ हुआ और यह शत-शत शाखाओं में विभाजित हुआ। इस प्रकार वे पुरुष रत्नों की उत्पत्ति के कारण रूप हुए।

फिर राजा भरत बाहुबली को नमस्कार कर परिवार सहित स्वर्ग राज्य लक्ष्मी की सहोदरा तुल्य अपनी अयोध्या नगरी को लौट गए।

भगवान बाहुबली मानो पृथ्वी से वहिर्गत हुए हों अथवा आकाश से अवतरित हुए हों इस प्रकार अकेले ही वहाँ कायोत्सर्ग ध्यान में निरत हो गए। ध्यान-लीन बाहुबली की दोनों आँखें नासिका के अग्रभाग पर स्थिर थीं और मानों दिक् समूह को वश करने की शंकु हों इस प्रकार स्थिर भाव से दण्डायमान वे महात्मा मुनि शोभित होने लगे। अग्नि स्फुलिंग की तरह तप्त धूल बरसाने वाली ग्रीष्मकालीन आँधी वे वनवृक्षों की तरह सहन कर रहे थे। अग्नि-कुण्ड-सा मध्याह्न का सूर्य उनके मस्तक पर ताप दे रहा था फिर भी ध्यान रूपी अमृत में लीन उन महात्मा पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सिर से पैर पर्यन्त देह पर लगी हुई धूल पसीने से कर्दम की तरह हो रही थी अतः वे कर्दम निर्गत वराह की तरह शोभित हो रहे थे। वर्षाकाल में जल वर्षण कारी हवा से एवं वृक्ष को कँपा देने वाली मूसलाधार वर्षा से भी वे विचलित नहीं हुए। वे पर्वत की तरह स्थिर रहे। पर्वत शिखर को थर्रा देने वाली बिजली भयंकर शब्द करती हुई गिरती फिर भी वे कायोत्सर्ग ध्यान से विचलित नहीं होते। जंगल के सरोवर की सीढ़ियों पर जिस प्रकार काई जम जाती है उसी प्रकार उनके पाँवों पर प्रवहमान जल से काई जम गयी थी। शीत के दिनों में नदी का जल जम जाने से नदी विनाशकारी हो उठती थी। किन्तु ध्यान रूपी अग्नि में कर्म रूपी ईंधन को जलाने में प्रयासरत बाहुबली वहीं आराम पूर्वक खड़े रहते। हिम से वृक्ष को क्लेश प्रदान करने वाली हेमन्त ऋतु की रात्रि में भी बाहुबली का धर्म-ध्यान कुन्द फूल की तरह बढ़ता रहा। जंगली भैंस मैंहा-

महीरुह के अंगों की तरह उनके शरीर पर टक्करें मारते और अपनी देह रगड़कर खुजली मिटाते। बाघिनियाँ उनके शरीर को पर्वत का निम्न भाग समझकर उनके सहारे सुख पूर्वक रात्रि व्यतीत करतीं। हाथी सल्लकी वृक्ष की डाल के भ्रम से उस महात्मा के हाथ-पाँव खींचता। किन्तु वे उससे खींचते नहीं थे अतः हाथी लज्जित होकर चला जाता। चमरी गायें निर्भय होकर वहाँ आतीं और मुँह ऊँचाकर आरे-सी कंटकमय जीभ से उस महात्मा की देह को चाटतीं। उनके शरीर को शत-शत शाखा प्रशाखा युक्त लताओं ने इस प्रकार जकड़ लिया था जैसे मृदंग में चमड़े की पट्टी जड़ी रहती है। उनकी देह के चारों ओर सरकण्डों के वृक्ष अंकुरित होने लगे। उससे वे इस प्रकार शोभित होते मानो पूर्व स्नेह वश आगत तीर युक्त तूणीर हो। वर्षा ऋतु के कर्दम में डूबे उनके पावों को बींधकर सौ-पावों वाले डाभ की शूलें अंकुरित हो गयी थीं। लता-आवृत उनकी देह पर पक्षियों ने बिना किसी बाधा के घोंसले बना लिए। वन्य-मयूर के शब्दों से भीत हजार-हजार सर्प लता से गहन होने के कारण उनके शरीर पर चढ़ते। उनके शरीर पर चढ़कर लटकते हुए सर्पों के कारण बाहुबली हजार हाथों वाले लगते। उनके पावों के पास बने विवर से निकलकर सर्प उनके पावों से इस प्रकार लिपट गए थे कि वे उनके कड़े से लगते।

इस प्रकार ध्यानलीन बाहुबली का एक वर्ष विचरण करते हुए अनाहारी भगवान ऋषभदेव के एक वर्ष की तरह व्यतीत हो गया। जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तब विश्व वत्सल भगवान ऋषभ ने ब्राह्मी व सुन्दरी को बुलाकर कहा—अब बाहुबली अनेक कर्मों को क्षयकर शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी की तरह अन्धकार रहित हो गए हैं। किन्तु पर्दे के पीछे रखा वस्त्र जिस प्रकार दिखलायी नहीं पड़ता उसी प्रकार मोहनीय कर्म के अंश रूप मान के कारण उन्हें केवल ज्ञान नहीं हो रहा है। अब तुम्हारी बात सुन कर वे मान छोड़ देंगे। अतः तुमलोग उपदेश देने के लिए उनके निकट जाओ। उपदेश देने का यही योग्य समय है।

प्रभु के चरणों में प्रणाम कर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करती हुई ब्राह्मी व सुन्दरी बाहुबली के पास जाने को रवाना हुईं। महाप्रभु ऋषभ पहले से ही बाहुबली के मान की बात जानते थे फिर भी एक वर्ष पर्यन्त उनकी उपेक्षा की। अर्हत् स्थिर लक्ष्य सम्पन्न होते हैं। एतदर्थ समय उपस्थित होने पर ही वे उपदेश देते हैं।

आर्या ब्राह्मी व सुन्दरी उस देश में गईं किन्तु धूल से आवृत रत्न की तरह अनेक लताओं द्वारा वेष्टित वे महामुनि उन्हें दृष्टिगोचर नहीं हुए। बहुत खोज

तलाश के पश्चात् वे आर्यिकाएँ वृक्ष के समान बने उस महात्मा को पहचान सकीं। बड़ी चतुरता से उन्हें भली भाँति पहचान कर दोनों आर्यिकाओं ने महामुनि बाहुबली को तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दन किया और इस प्रकार बोली— हे ज्येष्ठ आर्य, हमारे पिता भगवान ऋषभ ने हमलोगों के द्वारा आपको कहलवाया है—"हस्ती पर आरूढ़ व्यक्ति को केवल ज्ञान कभी नहीं होता।"

ऐसा कहकर दोनों आर्यिकाएँ जिस प्रकार आयी थीं उसी प्रकार चली गयीं। यह सुनकर महात्मा बाहुबली के मन में आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—मैंने समस्त सावद्य योग का त्याग किया है। मैं वृक्ष की तरह कायोत्सर्ग कर वन के मध्य खड़ा हूँ। फिर भी हस्ती पर आरूढ़ हूँ? कैसे? ये दोनों आर्यिकाएँ भगवान की शिष्याएँ हैं। ये कभी झूठ नहीं बोल सकतीं। तो फिर इसका क्या अर्थ है? हाँ—ऐसा होता है। अब मैं समझ गया! इतने दिनों मैं जो सोचता रहा व्रत में बड़े होने पर भी उम्र में छोटे मेरे भाइयों को मैं कैसे नमस्कार करूँगा—यही मेरा अभिमान है। यही वह हाथी है। उसी पर मैं निर्भय होकर बैठा हूँ। मैंने त्रिलोक के स्वामी की चिरकाल सेवा की है तब भी मुझे उसी प्रकार ज्ञान नहीं हुआ जिस प्रकार जल निवासी कर्कट को तैरना नहीं आता। इसीलिए मुझसे पूर्व व्रत ग्रहण करने वाले महामना भाइयों को ये छोटे हैं ऐसा समझकर वन्दना करने की इच्छा नहीं हुई। अब मैं अभी जाकर उन महामुनियों की वन्दना करूँगा।

ऐसा विचार कर महासत्व बाहुबली ने जाने के लिए जैसे ही पाँव उठाए उसी क्षण जिस प्रकार उनके शरीर से लताएँ छिन्न होने लगीं उसी प्रकार उनके घाती कर्म भी क्षय होने लगे और तत्क्षण उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। जिन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे सौम्य दर्शन युक्त महात्मा बाहुबली चन्द्र जैसे सूर्य के पास जाता है उसी प्रकार ऋषभ स्वामी के पास गए। तीर्थंकर को प्रदक्षिणा देकर एवं तीर्थ को नमस्कार कर जगत्पूज्य बाहुबली मुनि प्रतिज्ञा में उत्तीर्ण होकर केवलियों की पर्षदा में जा बैठे।

पंचम सर्ग समाप्त

षष्ठ सर्ग

भगवान ऋषभदेव के शिष्य, अपने नाम की तरह ग्यारह अंग का पठन करने वाला साधु गुण युक्त एवं हस्तिपति के साथ जिस प्रकार कलभ (हस्ती शावक) रहता है इसी प्रकार स्वामी के साथ सर्वदा विचरणकारी भरत पुत्र मरीचि स्वामी के साथ ग्रीष्मकाल में विहार कर रहे थे। एक दिन द्विप्रहर के समय

चारों ओर के पथ की धूल सूर्य किरणों से इस प्रकार प्रखर हो उठी मानों लौह धौकणी से हवा कर उन्हें उद्दीप्त किया गया है। जैसे अदृश्य अग्नि की ज्वाला हो इस प्रकार उत्तप्त आवर्त्त द्वारा पथ रूद्ध हो गया था। उसी समय अग्नि से उत्तप्त इषत् आर्द्र इंधन की तरह उनका शरीर सिर से पैर तक स्वेद धारा से पूरित हो गया था। जल में भिगोए सूखे चमड़े की गन्ध की तरह पसीने में भींगे वस्त्रों के कारण उनके शरीर के मैल की दुःसह दुर्गन्ध आ रही थी। उनके पाँव जले जा रहे थे। उस समय उनकी स्थिति उत्तप्त स्थान में स्थित नकुल जैसी हो रही थी। ग्रीष्म के कारण वे प्यास से आकुल हो सोचने लगे :

केवल ज्ञान और केवल दर्शन रूप सूर्य-चन्द्र द्वारा शोभित होकर मेरु पर्वत तुल्य त्रिलोक गुरु ॠषभदेव स्वामी का मैं पौत्र हूँ और अखण्ड छः खण्ड सहित पृथ्वी मण्डल के इन्द्र एवं विवेक में अद्वितीय निधि रूप राजा भरत का मैं पुत्र हूँ। चतुर्विध संघ के समक्ष ॠषभदेव स्वामी से मैंने पंच महाव्रत धारण कर दीक्षा ग्रहण की। अतः जिस प्रकार वीर पुरुषों का युद्ध से भागना उचित नहीं होता उसी प्रकार इस स्थान को त्याग कर घर जाना मेरे लिए उचित नहीं होगा। वह लज्जास्पद है। किन्तु वृहद् पाषाण को जिस प्रकार बहुत कठिनता से उठाया जा सकता है उसी प्रकार चारित्र रूपी इस भार को तो मैं क्षण मात्र के लिए भी वहन करने में असमर्थ हूँ। मेरे लिए यह व्रत पालन कठिन हो गया है। किन्तु इसका परित्याग कर देने से कुल कलंकित होगा। अतः एक ओर सिंह दूसरी ओर नदी इस भाँति मैं मध्य में फँस गया हूँ किन्तु मैं जान गया हूँ पर्वत पर चढ़ने के लिए जैसे पगडण्डी होती है उसी प्रकार इस कठिन मार्ग का भी सुगम मार्ग है।

ये सब साधु मनोदण्ड कायदण्ड को जीतने वाले हैं। किन्तु मैं तो इनसे पराजित हो गया हूँ इसलिए मैं त्रिदण्डी बनूँगा। ये श्रमण इन्द्रिय जय करते हैं और केश उत्पाटित कर मुण्डित हो जाते हैं किन्तु मैं माथा मुण्डित कर शिखा रखूँगा। ये स्थूल और सूक्ष्म उभय प्रकार के प्राणी वध से विरक्त हो गए हैं और मैं केवल स्थूल प्राणी वध से विरत रहूँगा। ये अंकिचन रहते हैं और मैं स्वर्ण मुद्रादि रखूँगा। उन्होंने जूतों का परित्याग किया है किन्तु मैं जूते पहनूँगा। ये अठारह हजार शील धारण कर अत्यन्त सुवासित हो गए हैं मैं उनसे रहित होकर दुर्गन्ध युक्त हो गया हूँ इसीलिए चन्दन ग्रहण करूँगा। ये श्रमण मोह रहित हैं मैं मोह द्वारा आविष्ट इसके चिह्न रूप सिर पर छत्र धारण करूँगा। ये कषाय रहित होने के कारण श्वेत वस्त्र धारण करते हैं मैं कषाय

द्वारा कलुषित हूँ इसलिए कषाय (गैरिक) वस्त्र धारण करूँगा। ये मुनि पाप के भय से अनेक जीव युक्त सचित्त जल का त्याग करते हैं मैं परिमित जल में स्नान करूँगा, पान करूँगा।

इस प्रकार स्वबुद्धि से निज वेष की कल्पना कर मरीचि ऋषभदेव के साथ प्रव्रजन करने लगे। खच्चर जिस प्रकार गधा या घोड़ा नहीं होता उभय अंशों से उत्पन्न होता है उसी प्रकार मरीचि भी न मुनि थे न गृहस्थ। वे उभय अंशों को लेकर नवीन वेषधारी साधु बन गए थे। हंसों के मध्य काक की तरह साधुओं के मध्य इस विकृत साधु को देखकर बहुत से लोग 'धर्म क्या है ?'—उनसे पूछते। उसके उत्तर में वे मूल और उत्तर गुण युक्त साधु धर्म का उपदेश देते। यदि कोई उनसे पूछता कि तब आप उस प्रकार क्यों नहीं चलते तो वे कहते, मैं असमर्थ हूँ। ऐसे उपदेश से यदि कोई भव्य जीव दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा करता तो वे उन्हें प्रभु के पास भेज देते। अतः मरीचि से प्रतिबोध प्राप्त भव्य जीव को निष्कारण उपकारकारी बन्धु के समान भगवान स्वयं दीक्षा देते।

इस प्रकार प्रभु के साथ प्रव्रजनकारी मरीचि के शरीर में एक दिन काठ में जैसे घुन लग जाता है उसी प्रकार एक महा व्याधि उत्पन्न हो गयी। यूथभ्रष्ट कपि की तरह व्रत भ्रष्ट मरीचि का उनके साथी साधुओं ने प्रतिपालन नहीं किया। ऊख का खेत जैसे रक्षकहीन होने पर शूकर आदि पशुओं द्वारा क्षतिग्रस्त हो जाता है उसी प्रकार सेवा-सुश्रूषा न होने पर मरीचि के लिए वह व्याधि अत्यधिक दुःखदायी हो गयी। वृहद् अरण्य में सहायहीन पुरुष की तरह घोर व्याधि से आक्रान्त मरीचि अपने मन में विचार करने लगा—हाय ! मेरे इसी भव में किसी अशुभ कर्म का उदय हुआ है इसलिए अपने साधु ही अन्य की तरह मेरी उपेक्षा करते हैं। किन्तु उल्लू जैसे दिन में नहीं देख पाता उसमें प्रकाशकारी सूर्य का कोई दोष नहीं है। कारण उत्तमकुल सम्पन्न जिस प्रकार म्लेच्छ की सेवा नहीं करते उसी प्रकार पाप कर्म करने वाले की सेवा कैसे करेंगे ? फिर उनसे सेवा करवाना भी मेरे लिए उचित नहीं है। कारण व्रत भंग से मुझे जो पाप लगा है उनसे सेवा कराने से उसमें और वृद्धि ही होगी। मेरी सेवा सुश्रूषा के लिए तो मेरे ही जैसा कोई मन्द धर्मात्मा व्यक्ति का सन्धान करना होगा कारण मृग के साथ मृग का ही मिलान होगा। ऐसा विचार करते-करते कुछ दिन बाद मरीचि रोग मुक्त हो गए। कहा भी गया है कि ऊसर भूमि भी कभी-कभी अपने आप उपजाऊ हो जाती है।

एक समय भगवान ऋषभदेव विश्व के उपकार के लिए जो वर्षाकालीन मेघ की तरह हैं शना दे रहे थे। वहाँ कपिल नामक कोई भव्य राजकुमार आया और धर्म श्रवण किया। भगवान कथित वह धर्म चन्द्रिका जैसे चक्रवाक को, दिवस जैसे उल्लू को, ओषध जैसे भाग्यहीन रोगी को, शीतल पदार्थ जैसे वातरोगी को और मेघ जैसे बकरे को अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार उसे अच्छा नहीं लगा। अन्य रूप धर्म सुनने की इच्छा से कपिल इधर-उधर देखने लगा। प्रभु की शिष्य मण्डली में तभी उसे विचित्र वेषधारी मरीचि दिखाई पड़ा। कुछ खरीदने की इच्छा से बालक जैसे बड़ी दुकान से छोटी दुकान पर जाता है उसी प्रकार अन्य धर्म श्रवण के लिए इच्छुक कपिल प्रभु के निकट से उठकर मरीचि के पास गया। उसने मरीचि से धर्म मार्ग पूछा। मरीचि ने उत्तर दिया—मेरे पास कोई धर्म नहीं है। यदि धर्म चाहते हो तो प्रभु का आश्रय लो। मरीचि की बात सुनकर कपिल पुनः प्रभु के पास गया और पूर्व की भाँति धर्मोपदेश सुनने लगा।

उसके जाने के पश्चात् मरीचि ने विचार किया स्वकर्म दूषित इस व्यक्ति को प्रभु का धर्म अच्छा नहीं लगा क्योंकि दरिद्र चातक को पूर्ण सरोवर से क्या लाभ ?

अल्पक्षण के पश्चात् कपिल पुनः मरीचि के पास आया और बोला—आपके पास क्या जैसा-तैसा धर्म भी नहीं है ? यदि धर्म नहीं है तो व्रत कैसे सम्भव है ? मरीचि ने सोचा—दैवयोग से यह मेरे जैसा ही लगता है। बहुत दिनों पश्चात् समान विचार धर्मी प्राप्त हुआ है। अतः मुझ असहाय का यही सहायक बने। ऐसा सोचकर उन्होंने प्रत्युत्तर दिया—वहाँ भी धर्म है और यहाँ भी धर्म है। अपने इस उत्सूत्र कथन से मरीचि ने कोट्यानुकोटि सागरोपम का उत्कट संसार भ्रमण बढ़ा लिया। मरीचि ने तब कपिल को दीक्षा देकर अपना सहायक बना लिया। इन्हीं से परिव्राजक धर्म का आरम्भ हुआ।

विश्वोपकारी भगवान ऋषभदेव ग्राम, आकर, पुर, द्रोणमुख, खर्वट, पत्तन, मण्डप, आश्रम, खेट आदि पूर्ण पृथ्वी पर प्रव्रजन करने लगे।

प्रव्रजन के समय (१) अपने चारों ओर एक सौ पच्चीस योजन पर्यन्त मनुष्यों की व्याधि दूरकर वर्षा ऋतु के मेघ की तरह जगत के प्राणियों को शान्ति देते। (२) राजा जिस प्रकार अनीति दूर कर प्रजा को सुख पहुँचाता है उसी प्रकार टिड्डीदल, चूहे, पक्षी आदि उपद्रवकारी प्राणियों की प्रवृत्ति को संयमित कर सबकी रक्षा करते थे। (३) सूर्य जैसे अन्धकार को दूर कर प्राणियों

को सुख देता है उसी भाँति किसी कारणवश उत्पन्न अथवा शाश्वत वैर को दूर कर प्राणियों को प्रसन्न करते थे। (४) पहले जिस प्रकार सुख प्रदान कारी व्यवहार प्रवृत्ति से सबको आनन्दित करते थे उसी प्रकार अब विहार प्रवृत्ति से सबको आनन्दित करते। (५) औषध से जैसे अजीर्ण एवं अति क्षुधा दूर होती है उसी प्रकार वे अतिवृष्टि और अनावृष्टि दूर करते। (६) अन्तःशल्य की तरह उनके आने से स्वचक्र और परचक्र भय तत्क्षण दूर हो जाता। अतः सुखी लोग अत्यन्त उत्साह के साथ उनका स्वागत उत्सव करते। (७) मान्त्रिक पुरुष जैसे भूत या राक्षस से रक्षा करते हैं उसी प्रकार संहारकारक घोर दुर्भिक्ष से वे सब की रक्षा करते। इस उपकार के कारण समस्त जीव उनकी स्तुति करते। (८) भीतर न समा सकने के कारण बाहर आयी अनन्त ज्योति हो ऐसी और सूर्य मण्डल को परास्त करने वाली प्रभा वे धारण करते थे। (९) अग्रगामी चक्र से जैसे चक्रवर्ती शोभित होता है वैसे ही आकाश में अग्रगामी धर्मचक्र से वे शोभित होते। (१०) समस्त कर्मों को जय करने के कारण उच्च जय स्तम्भ की तरह छोटी-छोटी ध्वजाओं से युक्त एक धर्म ध्वजा उनके आगे-आगे चलती। (११) मानो उनके प्रयाण के लिए उचित कल्याण मंगल कर रहे हों ऐसी महान शब्दकारी दुंदुभि उनके आगे बजती। (१२) वे जैसे स्वयं के यश हों इस प्रकार आकाश स्थित पादपीठ सहित रत्न सिंहासन से शोभते थे। (१३) देवताओं द्वारा रखे स्वर्ण कमलों पर अपने सुन्दर चरण रखकर वे चलते। (१४) उनके भय से मानों रसातल में प्रवेश करना चाहते हों इस प्रकार निम्नमुखी तीक्ष्ण कंटकों द्वारा उनका साधु-साध्वी समूह आश्लिष्ट नहीं होता। (१५) छः ऋतुएँ एक साथ उनकी उपासना करतीं मानो कामदेव की सहायता कर उन्होंने जो पाप किया था उसका प्रायश्चित कर रही हों। (१६) पथ के चारों ओर के वृक्ष यद्यपि वे ज्ञान रहित हैं लगता उन्हें झुक कर प्रणाम कर रहे हैं। (१७) पंखे की हवा की तरह मृदु शीतल और अनुकूल पवन निरन्तर उनकी सेवा करता। (१८) स्वामी के प्रतिकूल गामियों का कल्याण नहीं होता ऐसा सोचकर पक्षी नीचे उतर उनकी प्रदक्षिणा देते हुए दाहिनी ओर चले जाते। (१९) चपल तरंगों से जैसे समुद्र शोभा पाता है उसी प्रकार आवागमन कारी कम से कम एक कोटि सुरासुरों से वे शोभा पाते। (२०) भक्ति वश चन्द्र दिन के समय ही चन्द्रप्रभा सहित आकाश में स्थित हो गया है ऐसे छत्र से वे शोभित होते। (२१) मानों चन्द्र से पृथक कर दिया गया हो ऐसे किरण पुंज हों और गंगा-तरंग की तरह श्वेत चमर उन्हें वींजते। (२२) तपस्या से प्रदीप्त और सौम्य लक्ष-लक्ष साधुओं से प्रभु

इस प्रकार शोभित होते जैसे तारों के मध्य चन्द्रमा शोभा पाता है। जिस प्रकार सूर्य समस्त सागर और सरोवर के कमल को प्रफुल्लित करता है उसी प्रकार वे महात्मा प्रत्येक ग्राम और नगर के भव्य जीवों को प्रतिबोध देते।

इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान ऋषभदेव एकबार अष्टापद पर्वत पर गए।

वह पर्वत अत्यन्त सादा होने से लगता जैसे शरद् कालीन मेघमाला का एकत्रित पुँज हो या हिमीभूत क्षीर समुद्र की राशिकृत तरंग हो अथवा प्रभु के जन्माभिषेक के समय इन्द्र द्वारा रचित चार वृषभों के उच्च शृंगयुक्त एक वृषभ हो। वह पर्वत इस प्रकार शोभा पा रहा था मानो वह नन्दीश्वर द्वीप के सरोवर में स्थित दधिमुख पर्वत से आगत एक पर्वत हो या जम्बूद्वीप रूपी कमल की एक नाल या पृथ्वी का श्वेत रत्नमय मुकुट हो। वह निर्मल और प्रकाशशील था अतः ऐसा लगता कि देव सर्वदा उसे स्नान कराते हों और वस्त्र से पोंछते हों। हवा में प्रवाहित होकर आयी कमल-रेणु से उसके निर्मल स्फटिक मणियों के तट को रमणियाँ नदी प्रवाह समान देखती थीं। उसके शिखर के अग्र भाग में विश्राम निरत विद्याधर पत्नियों को वह वैताढ्य और क्षुद्र हिमालय पर्वत को याद करवाता। ऐसा लगता जैसे वह स्वर्ग भूमि का दर्पण हो, दिग्समूह का अतुल हास्य हो एवं ग्रह नक्षत्र निर्माण करने की मिट्टी का अक्षय स्थल हो। उस शिखर के मध्य भाग में क्रीड़ा श्रान्त मृग बैठे थे उससे वह मृग लांछन का (चन्द्रमा का) भ्रम उत्पन्न कर रहा था। निर्झरिणी पंक्तियों से वह इस प्रकार शोभता था मानो वह निर्मल अर्द्ध वस्त्र परित्याग कर देता हो अथवा सूर्यकान्त मणि की प्रसारित किरणों से वह उच्च पताका युक्त हो। उसके उच्च शिखर के अग्रभाग पर सूर्य का संक्रमण होता। इससे वह सिद्धों की मुग्ध वधुओं को उदयाचल का भ्रम उत्पन्न करवाता। मानो मयूर पंखों से निर्मित वृहद् छत्र हो ऐसे अति आर्द्र पत्र वृक्षों की उस पर निरन्तर छाया रहती थी।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ॥ मार्च-अप्रैल १९८४

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'घृणा एक घातक विष' (डा० उम्मेदमल मुणोत), 'भगवान महावीर के आदर्श और यथार्थ की पृष्ठ भूमि' (मुनि श्री नगराज), 'भगवान महावीर की धर्म देशना' (डा० रामदेव राम), 'राजगीर : तारीख के आइने में' (डा० आर० इशरी अरसद)।

जैन जगत ॥ मार्च १९८४

इस अंक में है 'वैयक्तिक जीवन के दो सूत्र' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), 'धर्म और विज्ञान' (रामेश्वर दयाल दूबे)।

तीर्थंकर ॥ मार्च १९८४

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'तत्वार्थ सूत्र में न्याय शास्त्र : बुनियाद की खोज' (डा० दरबारी लाल कोठिया), 'प्रतिक्रमण' (डा० भानीराम) 'ग यानी गणेश, स यानी सहजानन्द, ज यानी जिनेन्द्र' (कन्हैयालाल सरावगी), 'परस्पर व्यवहार के दो चरण : सत्य और समत्व' (मुनि मोहनलाल शार्दूल), 'पडरौना ही पावा क्यों ?' (भगवती प्रसाद खेतान), 'बात शब्दों की' (डा० नेमीचन्द जैन), 'पत्र में लेख' (गणेश ललवानी)।

तित्थयर

वर्ष ७

मई १९८३-अप्रैल १९८४

कथानक

	चेल्लना हरण	१०६
	धन्य और शालिभद्र	२३९
	प्रसन्न चन्द्र	३३२
	मेतार्य	१७१
	मोक्ष सुख	३०५
हेमचन्द्राचार्य	त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	४२, ८२, ११८, १४९, १८३, २१६, २४३, २७६, ३१०, ३४३, ३७२

कविता

चन्द्रप्रभ सागर	इसे कहते है क्षमा !	१३९
—	दीप ज्योति/आत्म ज्योति	२६५
—	बदलना	३२५
भानीराम	समण सुत्तम्	३०८

जीवनी

बनारसीदास	अर्द्ध कथानक	२६, ५२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ

	जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या	३२, ६१, ९६, १२८, १६०, १९१, २२३, २५५, २८७, ३२०, ३५१, ३८०

निबन्ध

	जैन पत्र साहित्य एवं विनती व विज्ञप्ति पत्र	३२५
अजय कुमार सिन्हा	पाटलीपुत्र की प्राचीन जैन कला	२६७
कस्तूरचंद कासलीवाल	विश्व विद्यालय द्वारा उपेक्षित जैन साहित्य	१३३
जौहरीमल पारख	जैन पुस्तकालय के विभागीकरण का एक नक्शा	३३६
—	हस्तलिखित ग्रन्थों की विभागीय नोंधा का नक्शा	३६४

नाग कुमार मकाती	श्रीमद् देवचन्द्र	१६७
पद्मसागर सूरि	आत्मज्ञान	१०१
परमानन्द जैन	मध्य भारत का जैन पुरातत्व	२७०, २६५, ३३८, ३६६
प्रकाश चन्द जैन	डा० लुई पी० टैसीटोरी	६६
प्रकाश चन्द भार्गव	श्री चिन्तामणि जैन मन्दिर (बीकानेर) की धातु प्रतिमाएँ	१६५
भँवरलाल नाहटा	खरतरगच्छ विभूषण श्री मोहनलाल जी महाराज का पत्र	१०५
—	श्री सम्मेत शिखर जी के सम्बन्ध में श्री जिन मुक्ति सूरि जी को खाजुराम मोदी द्वारा प्रेषित विनती पत्र	११
भगवतीलाल शर्मा	जैन गजल साहित्य : एक परिचयात्मक आलेख	१७५, २०६, २३५
युधिष्ठिर माजी	चेलियामा की सराक संस्कृति	२६१
—	तेलकूपी में सराक और ब्राह्मण संस्कृति की मिश्र रूप-रेखा	२२६
—	प्राचीनतम् सराक संस्कृति का निदर्शन पाड़ा का मन्दिर	५
—	बिहार सीमान्त की प्राचीनतम् सराक संस्कृति	३७
युवाचार्य महाप्रज्ञ	अर्हं	२६३
रंजन सूरि देव	हिन्दी जैन भक्त कवियों की मधुर भावना	३५७
राका जैन	जीवन्धर चम्पू में नारी निरूपण	७७
लियोना स्मिद क्रेमसर	दिव्य मूर्त्ति ! दिव्य सत्य !	७४
हुकुमचन्द भारिल्ल	महा पण्डित टोडरमल	१४१

श्रद्धांजलि

गीता ललवानी	स्वर्गीय कस्तूरचन्द ललवानी	२८३

समीक्षा

मुनि गुलाबचन्द 'निर्मोही'	मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास	२२१
—	वर्धमान जीवन कोश १म खण्ड	१५६

चित्र

अम्बिका, सतना	२६२
आदिनाथ चौबीसी, भागलपुर	१३२
ऋषभनाथ, घाटेश्वर, २४ परगना	१००
चन्द्रप्रभ स्वामी, पाकुर	१६४
पद्मावती, मुंगेर	१६६
पार्श्वनाथ, रक्षतपुर	२६०
प्राचीन शिल्प कला, मौंचा टाड	३६
मंदिर का अलंकरण, पाड़ा	७
सराक मन्दिर, चेलियामा	२६०
सराक जैन मन्दिर, तेलकूपी	२२८
सराक मन्दिर, पाड़ा	४
डा० लुई पी० टैसीटोरी	६८

Vol. VII No. 12 : Titthayara : April 1984
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001